‘*बरखा*’ क्रमिक पुस्तकमाला जेंडर के मुद्दे

उषा शर्मा*

भाषा और जेंडर के मुद्दे बेहद अहम हैं। वह इसलिए क्योंकि भाषा अपने माध्यम से बहुत कुछ संप्रेषित करती है और वह अपने ‘बहाने’ ऐसा बहुत कुछ ‘कहने’ की भी सामर्थ्य रखती है जो सतही तौर पर आसानी से नज़र आने वाला नहीं है। ‘पंक्तियों के बीच पढ़ना’ इसी को कहते हैं। जेंडर संबंधी संवेदनशीलता या असंवेदनशीलता भी इस भाषा के माध्यम से ‘कही’ जाती है। एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा विकसित ‘*बरखा*’ क्रमिक पुस्तकमाला बच्चों में पठन कुशलता, चिंतन-क्षमता का विकास और विभिन्न मुद्दों के संदर्भ में अपने ‘हिस्से’ का अर्थ गढ़ने की दिशा प्रशस्त करती है। प्रस्तुत लेख जेंडर संबंधी विमर्श का विस्तार है कि ‘*बरखा*’ क्रमिक पुस्तकमाला की चालीस कहानियों में जेंडर की व्याप्ति किस प्रकार हुई है और किस प्रकार से किसी जेंडर विशेष से जुड़ी रूढ़िवादिता को तोड़ने का सफल प्रयास किया गया है — इसकी जाँच करने की कोशिश की गई है। बबली, जीत, काजल, माधव, रानी, जमाल, मिली आदि सभी पात्रों की अस्मिता और पहचान को बरकरार रखने की संवेदना का स्पंदन इन सभी कहानियों में बखूबी किया जा सकता है। समावेशी शिक्षा के संदर्भ में जेंडर संवेदनशीलता को ‘बरखा’ क्रमिक पुस्तकमाला में टटोलने का प्रयास इस लेख में किया गया है।

पृष्ठभूमि

‘शिक्षा का अधिकार’ ने बच्चों की शिक्षा को अनेक प्रकार से प्रभावित किया है। उन्हें शाला में दाखिल होने का अधिकार दिया और इस बहाने उन्हें समाज की मुख्य धारा में शामिल होने का अधिकार भी मिल गया। हमारे संविधान में भी ऐसे अनेक प्रावधान हैं जो समानता का समर्थन करते हैं और इस संबंध में अधिकार भी देते हैं। धर्म, लिंग, वर्ग, वंश, जाति, भाषा आदि के आधार पर सभी को समानता का अधिकार है। इस अधिकार की ‘उपस्थिति’ और ‘अनुपस्थिति’ दोनों के ही उदाहरण हमें देखने को मिलते हैं। लड़कियों और स्त्रियों को भी इस अधिकार के तहत अनेक प्रकार से लाभ पहुँचा है। उनकी स्थिति में भी सकारात्मक परिवर्तन आया है। समाज के हर क्षेत्र

* *प्रोफ़ेसर,* प्रारंभिक शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली

में उनकी उपस्थिति और उपलब्धि के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। लेकिन फिर भी अनेक बार ऐसे उदाहारण देखने को मिलते हैं जिनसे इस बात के संकेत मिलते हैं कि लड़कियों और स्त्रियों के प्रति हमारी सोच अभी भी नकारात्मक, संकीर्ण और पिछड़ी हुई है। उन्हें किन्हीं कार्य विशेष तक सीमित कर देना अथवा उनसे किसी व्यवहार विशेष की अपेक्षा करना इसी संकीर्णता के संकेत हैं। इतना ही नहीं हमारी अनेक सामाजिक मान्यताएँ, परंपराएँ और रीति-रिवाज़ इस तरह के हैं जिनमें जेंडर संबंधी भेदभाव झलकता है। लड़के-लड़कियों के बीच कार्यों का विभाजन भी इसी संकीर्ण सोच का परिणाम है। यह भेदभाव और इस भेदभाव को प्रत्यक्षतः व्यक्त करने वाली भाषा, जिसे हम सहज मानकर उस पर ध्यान नहीं देते, लड़कियों के समावेशन को बाधित करती है। इस ओर ध्यान देने और इसे परिवर्तित करने की आवश्यकता है। जेंडर संबंधी भेदभाव और इससे जुड़ी रूढ़िवादी मान्यताएँ, मानसिकता एक जटिल चुनौती है। इन्हें समाप्त करने के लिए शिक्षा, शिक्षाशास्त्र और इनसे संबद्ध पठन सामग्री को आधार बनाया जा सकता है। पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम तथा पाठ्यपुस्तकों में भी इस बात का विशेष रूप से ध्यान रखा जा रहा है कि जेंडर संबंधी संवेदनशीलता का विकास करने वाली विषय सामग्री का समावेश इनमें किया जाए। इस संदर्भ में भाषा एक अहम मुद्दा है, क्योंकि अनेक बार पाठ्य सामग्री की भाषा ही जेंडर संबंधी भेदभाव को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से संप्रेषित करती है और अपना गहरा प्रभाव छोड़ जाती है। उस स्थिति में समाज का एक वर्ग स्वयं को असमावेशित महसूस करता है। इस ओर ध्यान दिए जाने की और कुछ ठोस कदम उठाने की आवश्यकता है।

हम जानते हैं कि बच्चों की दुनिया में ही एक वर्ग ऐसा भी है जो किन्हीं कारणों से समूची शिक्षा-प्रक्रिया से बाहर है या फिर बाहर हो जाता है। यह वर्ग है उन बच्चियों का जो समाज के पटल पर कहीं किसी कोने में अपना स्थान पाती हैं। उनकी खूबियों और उनके मन के भीतर की उल्लसित उमंग को भी स्थान, सम्मान देने की आवश्यकता है। बच्चों के ऐसे वर्ग को भी शिक्षा की मुख्य धारा में समाविष्ट करने की ज़रूरत है। एक लंबे समय तक समावेशी शिक्षा का दायरा केवल निःशक्त या उन बच्चों तक सीमित था जिन्हें किसी प्रकार की कोई समस्या है। कुछ समय बाद समावेशी शिक्षा के संदर्भ में होने वाली चर्चाओं में विशेष आवश्यकता वाले बच्चों का ज़िक्र आने लगा। लेकिन इन्हें भी निःशक्त बच्चों के साथ जोड़कर देखा गया। जबकि सभी बच्चे विशेष होते हैं और उन सभी की आवश्यकताएँ भी विशेष ही होती हैं। फिर विशेष आवश्यकता वाले बच्चे — इस संबोधन की आवश्यकता ही कहाँ रह जाती है। समावेशन सभी बच्चों के समावेशन की चर्चा करता है। इस संदर्भ में हमारी पाठ्यपुस्तकें और विभिन्न प्रकार की पठन सामग्री किस प्रकार सभी बच्चों के समावेशन की आवश्यकता को संबोधित करती हैं — यह शोध का विषय है।

बच्चे और भाषा

कभी किसी छोटे बच्चे के पास बैठकर सिर्फ़ उसकी बातें सुनना और बातें कहने के तरीके को 'निहारना' सचमुच बच्चों के भाषा-संसार का दरवाज़ा खोल

देता है। बच्चों की अपनी भाषा, अपने शब्द होते हैं जो उनके लिए काम की चीज़ होते हैं। एक व्यक्ति जो बच्चों की भाषा से गहरा प्रेम रखता है — उसके लिए तो यह एक अनमोल कुंजी है जो बच्चों के भाषा संसार का रहस्योद्‌घाटन करती है। किसी भी उम्र के बच्चों के शब्दों में एक प्रकार की आत्मीयता और लगाव छिपा होता है, क्योंकि वह स्वयं उनका निर्माण करता है, अपने तरीके से इस्तेमाल करता है। बच्चों की भाषा में आप-हम वे सभी रंग देख सकते हैं जितने रंगों से सराबोर उनकी अपनी दुनिया होती है। उनकी दुनिया के ये विविध रंग उनकी बातों में भी नज़र आते हैं जब वे दादी की गोद में जा छिपने की बात करते हैं या चाचा से पैसे लेकर चुस्की खरीदने की बात करते हैं। उनकी दुनिया में तो पड़ोस के चंदू से आसमान में नज़र आने वाले चाँद की बातें होती हैं, नानी की कहानी, चाची की साड़ी का तंबू, दीदी की किताबें, चोट खाए तोते और पिल्ले, बारिश के पानी में छपाका मारना — और भी न जाने क्या-क्या! हम और आप तो केवल उन लम्हों के साक्षी ही बन सकते हैं जब बच्चे अपनी नन्हीं-सी दुनिया के बारे में बड़ी-बड़ी बातें करते हैं। बच्चे जब अपनी ज़िंदगी के छुए-अनछुए पहलुओं के बारे में 'बड़ों' की सी बातें करते हैं तो उनके मन-मस्तिष्क में चहलकदमी करते हुए विचारों की झलक भी मिल जाती है। इसका प्रमुख कारण यह है कि भाषा और विचार के बीच बहुत गहरा संबंध होता है। एक ओर तो भाषा हमारे विचारों को बुनने का काम करती है तो दूसरी ओर भाषा हमारे उन विचारों की बुनावट में विस्तार करने, उनमें कुछ नया जोड़ने या फेरबदल करने का काम करती है। इन सब में हमारे पूर्व अनुभवों का सबसे बड़ा योगदान होता है। समृद्ध अनुभवों की इसी पूँजी के आधार पर हम जीवन-जगत को अर्थ देते-लेते हैं। यही कारण है कि एक कहानी अलग-अलग संदर्भों में, अलग-अलग पाठकों के लिए अलग अर्थ या मायने रखती है। प्रेमचंद की कहानी 'दो बैलों की कथा' एक नन्हे पाठक के लिए महज़ दो बैलों की कहानी है। लेकिन एक वयस्क पाठक के लिए वह कहानी स्वतंत्रता संग्राम में भागीदार 'नरम दल' और 'गरम दल' का प्रतीकात्मक विवरण है। ऐसे ही उनकी कहानी 'बड़े भाई साहब' भी देखी जा सकती है। बच्चों की हैसियत से पढ़ेंगे तो बहुत मज़ेदार लगेगी और कई जगह बाल सुलभ सवाल भी अनुभूत होंगे। लेकिन जब इसे वयस्क और उसमें भी शिक्षक की हैसियत से पढ़ेंगे तो यही कहानी मौजूदा शिक्षा-व्यवस्था पर कई प्रहार और सवाल खड़े करते हुए बेहद गंभीर विमर्श से ओत-प्रोत लगेगी। ऐसे अनेक उदाहरण हमारे-आपके आस-पास मिल जाएँगे जो इस बिंदु का समर्थन करेंगे कि अलग-अलग पाठ्य-सामग्री अलग-अलग रूपों में हमारे मन-मस्तिष्क को प्रभावित करती है। बच्चे इसका अपवाद नहीं हैं! शब्दों का जादू तो हर शख्स के सिर चढ़कर बोलता ही है!

भाषा और जेंडर संवेदनशीलता

भाषा और जेंडर के मुद्दे बेहद अहम हैं। वह इसलिए क्योंकि भाषा अपने माध्यम से बहुत कुछ संप्रेषित करती है और वह अपने 'बहाने' ऐसा बहुत कुछ 'कहने' की भी सामर्थ्य रखती है जो सतही तौर पर आसानी से नज़र आने वाला नहीं है। 'पंक्तियों के

बीच पढ़ना' इसी को कहते हैं और पाठक की यही कुशलता उसे बहुत कुछ ऐसा 'समझा' जाती है जो वास्तव में 'समझने-परखने' लायक है। जेंडर संबंधी संवेदनशीलता या असंवेदनशीलता भी इस भाषा के माध्यम से 'कही' जाती है। आइए, कुछ ऐसे ही उदाहरणों को लेते हैं जहाँ किसी साहित्यिक कृति अथवा पाठ्य-सामग्री की भाषा अपना रंग छोड़ती है और उस भाषा का जादू हमारे विचारों को गाहे-बगाहे प्रभावित करता है —

"कल हमारे यहाँ इंस्पेक्टर था। मैंने खूब अच्छे जवाब दिए तो इंस्पेक्टर साहब ने मुझे शाबाशी दी और सर ने भी!"

"शाबाश! लो हमने भी शाबाशी दे दी!" और पापा ने उसकी पीठ थपथपा दी।

"और खेल कौन-कौन-से खेलते हो?"

"ताश, लूडो, कैरम..."

*"क्या कहा, ताश, लूडो, कैरम — धत्तेरे की! **यह भी कोई खेल हुए, लड़कियों के। क्रिकेट खेलो, हॉकी खेलो, कबड्डी खेलो, लड़कों वाले खेल खेलो। घर से बाहर निकलकर भागने-दौड़ने वाले...***

अच्छा, " पेड़ पर चढ़ सकते हो?..."

"तैरना सीखा? ..."

"साइकिल चलाना आता है?..."

*"**छी-छी, इतने बड़े होकर भी मम्मी के बिना नहीं रह सकते। यह गंदी बात है, बेटे!** अब तुम्हें मम्मी के बिना रहने की आदत डालनी चाहिए। **तुम क्या लड़की हो जो मम्मी से चिपटे-चिपटे फिरते हो?**"*

(*आपका बंटी* – मन्नू भंडारी)

*काकी का नाम जनकदुलारी है। पूरब में काकी चाची को कहते हैं। ... काकी की शादी पहले कहीं और हुई थी। आदमी उमर में थोड़ा पक्का था। पूछने पर काकी ने बताया — "उमिर तो रहै हमका गोद में लैके खिलावै के और करैं सक-सुबहा! कौनो सुख नहीं जाना! जैसे कन्ता घर रहे वैसे रहे बिदेस। दाना न घास खरहरा दोनों जून। हम रहैं मजबूत — भागि आए मायके। बाप ने समझ लिया, बोले — "**तुम बिटिया नहीं बेटवा हो, घर का काम करो और रहौ ...** रिश्तेदार जो खार खाए बैठे थे, थानेदार को कुछ सुँघाया — सरकार इसकी बेटी भी ज़ालिम है, नाक कटाकर मायके में कमाती है। थानेदार बोला — क्यों जी, बुलाओ जनकदुलारी को — देखें कैसी है। सिपाही घर पहुँचे तो काकी ने कहा — "थानेदार होंगे अपने घर के। ...." सिपाहियों ने कहा — "ज़्यादा नखरा न बघारो, चार हंटर पड़ेगा तो नशा हिरन हो जाएगा। **सीधी चला नहीं तो झोटा पकड़कर ले जाएँगे।**"*

(*जनकदुलारी हमारे गाँव की* – विश्वनाथ त्रिपाठी)

छोटी-सी लड़की थी वह। करीब दस साल की। एक बड़े साँप का पीछा कर रही थी। मैं उसके पीछे भागी और उसकी चोटी पकड़कर उसे ले आई। "ना, मोइना ना" मैं उस पर चिल्लाई।

"क्यूँ?" उसने पूछा —

"क्यूँ? क्यूँ दूँ उसे धन्यवाद? उसकी गोशाला धोती हूँ, हज़ारों काम करती हूँ। उसके लिए कभी धन्यवाद देता है मुझे? मैं क्यूँ उसे धन्यवाद दूँ?"

*मोइना अपने काम पर भाग गई। खीरी सर हिलाती रह गई। फिर मुझसे बोली — "**ऐसी लड़की नहीं देखी कभी। बस क्यूँ? क्यूँ? की रट लगाए रहती है।**" गाँव के पोस्टमास्टर ने तो उसका नाम ही 'क्यूँ-क्यूँ छोरी' रख दिया है।*

"मोइना मुझे तो अच्छी लगती है।" मैंने खीरी से कहा। —

*"**क्यूँ मुझे बाबू की बकरियाँ चरानी पड़ती हैं? उसके लड़के खुद क्यूँ नहीं चराते?**" मछलियाँ बोल*

क्यूँ नहीं पातीं? अगर कई तारे सूरज से बड़े हैं तो वे इतने छोटे क्यूँ नज़र आते हैं?

(क्यूँ-क्यूँ छोरी– महाश्वेता देवी*)*

इन तीनों उदाहरणों में यह साफ़ झलकता है कि तीनों में लड़कियों या स्त्री वर्ग की जो छवि उकेरने की कोशिश की गई है वह हमारे मानस पटल पर अलग-अलग प्रभाव छोड़ती है। पहले उदाहरण में लड़के और लड़की के बीच की गहरी खाई स्पष्ट रूप से नज़र आती है। लड़के और लड़कियों द्वारा खेले जाने वाले खेलों में भी 'क्लीयर कट विभाजन' नज़र आता है। लड़के बाहर खेले जाने वाले खेल खेलते हैं, पेड़ पर चढ़ते हैं, तैरते हैं जबकि लड़कियाँ घर के भीतर खेले जाने वाले खेल, जैसे — *'ताश, लूडो, कैरम'* खेलती हैं। बंटी के पापा उससे कहते हैं — *'क्रिकेट खेलो, हॉकी खेलो, कबड्डी खेलो, लड़कों वाले खेल खेलो। घर से बाहर निकलकर भागने-दौड़ने वाले---'* यह साफ़-साफ़ घोषणा पाठकों के मन पर अपना प्रभाव छोड़ती है। इतना ही नहीं बंटी के पापा उससे अपनी माँ से दूर सोने, रहने की बात कहते हैं और साथ ही उनका यह कहना कि *'तुम क्या लड़की हो जो मम्मी से चिपटे-चिपटे फिरते हो?'* लड़कियों के प्रति समाज में व्याप्त रूढ़िवादी और जड़ मानसिकता का परिचायक है। एक छोटा बच्चा अपनी माँ से लाड-दुलार का भी हकदार नहीं है? क्या लड़के और लड़की अपनी माँ के प्रति अपने लगाव को अलग-अलग तरीके से व्यक्त करने के लिए विवश हैं? क्या इन दोनों के मानदंडों में अनिवार्यतः कोई अंतर है? *'छी-छी', 'गंदी बात', 'चिपटे-चिपटे फिरना'* आदि ऐसे भाषा-प्रयोग हैं जो लड़कियों के प्रति एक खास तरह के 'पूर्वाग्रह को खुले तौर पर व्यक्त करते हैं। भाषा के माध्यम से व्यक्त होने वाला लड़कियों के प्रति यह 'दुर्भाव' समाज में बुरी तरह से व्याप्त है और लड़कियाँ इस 'दुर्भाव' से अभिशप्त हैं।

दूसरे उदाहरण में व्यक्त भाव कि *'तुम बिटिया नहीं बेटवा हो, घर का काम करो और रहौ--'* साफ़ तौर पर लड़के और लड़कियों के बीच के अंतर की घोषणा करता है। यदि समाज में लड़के और लड़की समान होते तो यह वाक्य ही बेमानी होता। लेकिन प्रसंगवश आए इस वाक्य ने जेंडर से जुड़े अनेक जटिल सवालों को हमारे समक्ष रखा है। जनकदुलारी अपने मायके यानी 'पिता के घर' वापस आती है तो पिता कहते हैं कि 'तुम बिटिया नहीं बेटवा हो'। इसका सीधा-सा निहितार्थ यह है कि बेटे को विवाह के बाद अपने घर में रहने का अधिकार है, लेकिन बेटी को विवाह के बाद अपने घर में रहने का अधिकार नहीं है। उसके द्वारा स्वयं अपने घर में रहने को 'वैध' बताने के लिए उसे 'बेटा' घोषित करना ज़रूरी है। इतना ही नहीं जनकदुलारी के लिए प्रयुक्त ये वाक्य भी दर्शाते हैं कि स्त्रियों के प्रति किस प्रकार का रवैया रहा है— *क्यों जी, बुलाओ जनकदुलारी को—देखें कैसी है।/ सिपाहियों ने कहा— "ज़्यादा नखरा न बघारो, चार हंटर पड़ेंगा तो नशा हिरन हो जाएगा। सीधी चला नहीं तो झोटा पकड़कर ले जाएँगे।"* ये वाक्य किसी भी दृष्टि से गरिमापूर्ण नहीं कहे जा सकते। किसी खास वर्ग के लिए इस तरह के भाषा-प्रयोग उस वर्ग को हाशिए पर लाकर 'छोड़' देते हैं।

इसी तरह तीसरे उदाहरण में मोइना का चरित्र एक ऐसी लड़की के रूप में दर्शाया गया है जो 'सवाल'

पूछती है और बहुत सवाल पूछती है। सवाल पूछने और सवाल खड़े करने में अंतर होता है। मोइना ये दोनों काम बखूबी करती है। *"ऐसी लड़की नहीं देखी कभी। बस क्यूँ? क्यूँ? की रट लगाए रहती है।"* इसका एक अर्थ यह भी निकलता है कि सामान्यतः लड़कियों को सवाल पूछने का अधिकार नहीं है या सवाल पूछना उनके स्वीकृत स्वभाव का हिस्सा नहीं है। यही कारण है कि मोइना के सवाल पूछने को इतने आश्चर्य और 'अस्वाभाविक' तौर पर प्रस्तुत किया गया है।

साहित्य और उसकी भाषा में अनेक ऐसी संभावनाएँ हैं जिन्हें जेंडर की दृष्टि से देखने और समझने की ज़रूरत है। बच्चों के लिए लिखा गया, रचा गया साहित्य भी इसका अपवाद नहीं है।

'बरखा' और जेंडर संवेदनशीलता

पाठ्यपुस्तकों के अतिरिक्त अन्य प्रकार की पठन सामग्री भी बच्चों के अनुभव संसार को विस्तार देती है, उनके अनुभव संसार का हिस्सा बनती है और उनकी सोच को प्रभावित करती है। इतना ही नहीं यह पठन सामग्री उनमें समझकर पढ़ने की कुशलता का भी विकास करती है। समझकर पढ़ने का अर्थ है— अपने अनुभवों के साथ उस सामग्री को जोड़ते हुए यह समझने का प्रयास करना कि वस्तुतः क्या कहने का प्रयास किया गया है और इस पठन सामग्री में अपने 'हिस्से' का अर्थ खोजना। यह पठन सामग्री बच्चों को पढ़ने का आनंद भी देती है और उनके चिंतन को विस्तार देती है। उनमें इस क्षमता का विकास भी करती है कि विभिन्न विचार-बिंदुओं के संबंध में अपनी राय बना सकें। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, नयी दिल्ली द्वारा विकसित 'बरखा' क्रमिक पुस्तकमाला एक ऐसा ही प्रयास है जो बच्चों में पठन कुशलता, चिंतन-क्षमता का विकास और विभिन्न मुद्दों के संदर्भ में अपने 'हिस्से' का अर्थ गढ़ने की दिशा प्रशस्त करती है। प्रस्तुत लेख जेंडर संबंधी विमर्श का विस्तार है कि 'बरखा' क्रमिक पुस्तकमाला की चालीस कहानियों में जेंडर की व्याप्ति किस प्रकार हुई है और किस प्रकार से किसी जेंडर विशेष से जुड़ी रूढ़िवादिता को तोड़ने का सफल प्रयास किया गया है—इसकी जाँच करने की कोशिश की गई है। बबली, जीत, काजल, माधव, रानी, जमाल, मिली आदि सभी पात्रों की अस्मिता और पहचान को बरकरार रखने की संवेदना का स्पंदन इन सभी कहानियों में बखूबी किया जा सकता है। समावेशी शिक्षा के संदर्भ में जेंडर संवेदनशीलता को 'बरखा' क्रमिक पुस्तकमाला में टटोलने का प्रयास इस लेख में किया गया है।

'बरखा' क्रमिक पुस्तकमाला एक शिक्षाशास्त्रीय संसाधन है जो इस सिद्धांत पर आधारित है कि बच्चों में पढ़ने-लिखने की नैसर्गिक क्षमताएँ होती हैं। यदि प्रारंभ से ही बच्चों को पढ़ने-लिखने के सार्थक अवसर दिए जाएँ तो वे समझ के साथ पढ़ना सीख सकते हैं और सफल पाठक बन सकते हैं। 'बरखा' क्रमिक पुस्तकमाला उन सभी बच्चों को पढ़ना-लिखना सीखने में मदद करती है जो अभी पढ़ना-लिखना सीखने के शुरुआती दौर में हैं। 'बरखा' क्रमिक पुस्तकमाला में कहानियों की कुल चालीस किताबें हैं जो बच्चों के निकटीय परिवेश के इर्द-गिर्द बुनी-रची गई हैं। इनमें बच्चे अपनी दुनिया की झलक पा सकते हैं। इन कहानियों के चार स्तर हैं और स्तर के अनुसार कहानियों के वाक्यों और

उपकथानक की गहनता बढ़ती जाती है। इन कहानियों में रिश्ते भी हैं तो खाने-पीने की चीज़ें भी हैं। पशु-पक्षी, खेल-खिलौने, वाद्य-यंत्र, आस-पास की चीज़ें — सभी कुछ इन कहानियों में देखने को मिलता है। शुरुआती पढ़ने-लिखने में ये किताबें मदद करती हैं और बच्चों को अपनी ही दुनिया से रू-ब-रू होने का अवसर देती हैं।

'बरखा' क्रमिक पुस्तकमाला में जेंडर संबंधी संवेदनशीलता और जेंडर-आधारित समावेश को बखूबी ध्यान में रखा गया है। यहाँ एक बात स्पष्ट करना ज़रूरी है कि जेंडर संवेदनशीलता की चर्चा में लड़कियों को बढ़-चढ़कर प्रस्तुत करना या उन्हें लड़कों की तुलना में बेहतर रूप में प्रस्तुत करना उद्देश्य नहीं है बल्कि लड़कियों को किसी बँधे-बँधाए साँचे से बाहर लाने और उनके प्रति संकीर्ण मानसिकता को तोड़ने का प्रयास किया गया है। और इस संबंध में जो किया गया है वह बेहद सहज है और कहीं भी आरोपित नज़र नहीं आता। 'बरखा' क्रमिक पुस्तकमाला में कुल दस पात्र हैं जिनके इर्द-गिर्द कहानियों का ताना-बाना रचा गया है। इनमें से छह पात्र लड़कियाँ हैं जो विभिन्न कथा-वस्तुओं में अपनी जगह बनाती हैं। ये पात्र हैं — रमा, रानी, काजल, बबली, तोसिया और मिली। ये सभी अपनी-अपनी खूबियों के साथ कथा-पटल पर नज़र आती हैं। जीत, माधव, जमाल और मदन इनके साथ ही खड़े नज़र आते हैं — उनसे श्रेष्ठ या कमतर नहीं। ये सभी लड़के-लड़कियाँ बच्चों की सहज दुनिया का हिस्सा बनते हैं। इनमें कहीं कोई भेदभाव, विरोध या द्वंद्व नज़र नहीं आता। सब हिले-मिले से एक-दूसरे के 'साथ' नज़र आते हैं। आइए, 'बरखा' क्रमिक पुस्तकमाला की कहानियों में जेंडर-आधारित समावेशन को समझने का प्रयास करते हैं।

सामान्यतः यह समझा जाता है कि पतंग उड़ाना लड़कों का काम है, उनका खेल है या उनका जन्मसिद्ध अधिकार है या फिर पतंग उड़ाने पर उनका ही वर्चस्व है। 'हमारी पतंग' शीर्षक कहानी में इस मिथक को तोड़ा गया है। इस कहानी में तोसिया और मिली तथा उनकी माताएँ पतंग बनाती हैं, पतंग उड़ाती हैं और बहुत ऊँची पतंग उड़ाती हैं। पतंग बनाने की पूरी प्रक्रिया को भी बखूबी समझाया गया है। *'मिली का मन हुआ कि वह भी पतंग उड़ाए'*— यह वाक्य किसी लड़की द्वारा समाज की रिवायतों को अपनी नियति न मानने की ओर संकेत करता है वरना सामान्यतः बच्चियाँ या लड़कियाँ या महिलाएँ पतंग उड़ाने की बात सोचती भी नहीं हैं और 'दिखती' भी नहीं हैं। मिली की माँ बहुत सहज भाव से उसकी इस इच्छा का मान रखती है और कहती है – 'चलो पतंग बनाते हैं।' तोसिया भी अपनी माँ के साथ पतंग उड़ाती है। इस कहानी के माध्यम से बच्चों में यह सोच विकसित होती है कि लड़कियाँ भी पतंग उड़ा सकती हैं। वह किसी खास व्यक्ति तक सीमित नहीं हैं। ऐसा भी नहीं है कि पतंग उड़ाने के संदर्भ में लड़कियों की भूमिका केवल चरखी पकड़ने तक ही सीमित है। एक सामान्य कहानी में ऐसा भी हो सकता था कि लड़का पतंग उड़ा रहा है और लड़की चरखी पकड़कर खड़ी है। 'हमारी पतंग' कहानी इस सामान्य सोच को भी तोड़ती है।

हमारे समाज में जिस तरह पतंग उड़ाने को लेकर संकीर्ण सोच है, वैसी ही सोच पेड़ पर चढ़ने को लेकर भी है। आम तौर पर हम कहानियों में लड़कों को ही

पेड़ों पर चढ़ते हुए देखते हैं। अगर लड़के-लड़कियों का समूह भी है तो भी लड़के ही पेड़ पर चढ़ेंगे। लेकिन 'पका आम' कहानी में तोसिया अपने स्कूल में लगे आम के पेड़ पर से आम तोड़ने की कई प्रकार से कोशिश करती है। वह लोहे के फ़ाटक पर चढ़ने की कोशिश करती है, लेकिन नहीं चढ़ पाती, क्योंकि लोहा गरम है। वह हार नहीं मानती और दूसरा उपाय सोचने लगती है। वह स्कूल की चारदीवारी के भीतर से दीवार के उस पार कूद जाती है और आम के पेड़ पर चढ़ जाती है। 'उसे पेड़ पर चढ़ना अच्छी तरह आता था।' यह वाक्य इस बात की घोषणा करता है कि पेड़ पर चढ़ना केवल लड़कों का अधिकार नहीं है। लड़कियाँ भी पेड़ पर अच्छी तरह से चढ़ सकती हैं। तोसिया के माध्यम से पाठकों को यह समझने का भी अवसर मिलता है कि लड़कियाँ किसी भी दृष्टि से कमज़ोर नहीं हैं। वे एक बार जो ठान लें, उसे अपने बलबूते पर और अपनी सूझ-बूझ से पूरा कर सकती है

'मिली का मन भी साइकिल चलाने को हुआ।---मिली ने मम्मी से साइकिल सिखाने के लिए कहा। मम्मी मिली को साइकिल चलाना सिखाने लगीं। ----मम्मी साइकिल के पीछे-पीछे चल रही थीं।' मिली से जुड़ी एक और कहानी – 'मिली की साइकिल' में मिली के माध्यम से एक सामान्य लड़की की इच्छा और मिली की मम्मी के माध्यम से एक सामान्य महिला का यह पक्ष उजागर होता है कि लड़कियाँ बहुत कुछ सीखना चाहती हैं, सीखती हैं और साइकिल चलाना सिखाने में माँ की भी भूमिका हो सकती है। अन्यथा हम यह पाते हैं कि साइकिल चलाना केवल लड़कों का ही अधिकार है और सामान्यतः पिता ही साइकिल चलाना सिखा सकते हैं। लेकिन यह कहानी इस भ्रांति को तोड़ती है और जेंडर संबंधी स्वस्थ दृष्टिकोण का विकास करती है। लड़कियाँ भी अपनी स्वतंत्र सोच एवं इच्छा रखती हैं, उनकी भी अपनी पसंद-नापसंद होती है—इस विचार को संप्रेषित करते हुए मिली की एक और कहानी देखी जा सकती है–'मिली के बाल'। *'मिली को चोटी बनवाना पसंद नहीं था। मिली को बाल खुले रखना पसंद था। उसे फैले-फैले बाल अच्छे लगते थे। मम्मी चोटी गूँथती तो मिली परेशान हो जाती।... मिली को बहुत दर्द होता था।'* ये पंक्तियाँ पाठक को यह विस्तार से जानने-समझने का अवसर देती हैं कि मिली को क्या पसंद है और क्या पसंद नहीं है। एक दिन मिली पापा के साथ जाकर अपने बाल कटवा आती है। उसके बाद जो होता है वह सामान्य पाठक की सोच के विपरीत हो सकता है। माँ मिली को डाँटने की बजाय प्यार से उसके बालों पर हाथ फेरती है और उसे गले लगा लेती है। अब तेल मलने में मिली को कोई कष्ट नहीं होता। मिली के माता-पिता का व्यवहार इस ओर संकेत करता है कि उन्हें अपनी बेटी की इच्छाओं का मान रखना आता है और मान रखा जाना चाहिए। 'मिली के बाल', 'मिली की साइकिल', 'हमारी पतंग' लड़कियों के स्वतंत्र अस्तित्व, उनकी स्वतंत्र सोच, इच्छा और पसंद-नापसंद की कहानियाँ हैं जो पाठक को यही संदेश देती हैं कि लड़कियाँ भी स्वतंत्र हैं और उनकी स्वतंत्रता का सम्मान किया जाना चाहिए।

'बरखा' क्रमिक पुस्तकमाला की कहानियों में बच्चों के द्वारा खेले जाने वाले खेलों का भी चित्रण मिलता है। लेकिन इन कहानियों की विशेषता यह है

कि इनमें गुड्डे-गुड़ियों से खेलने वाली लड़कियों की एक आम छवि को तोड़ने का सफल प्रयास किया गया है। 'गिल्ली-डंडा' कहानी में '*बबली को तैरना आता था।*' वह तालाब में से गिल्ली लाती है और '*सबके साथ गिल्ली-डंडा खेलने लगती है।*' वह ज़ोर से डंडा घुमाती है और गिल्ली फिर से तालाब के पार चली जाती है। इस कहानी में लड़कों के साथ लड़की को भी गिल्ली-डंडा खेलते हुए दिखाया गया है। बबली इस खेल को खेलने में किसी भी तरह से कमज़ोर नहीं है — इस बात की घोषणा तब हो जाती है जब यह बताया जाता है कि '*गिल्ली फिर से तालाब के पार चली गई।*' इसी तरह 'छुपन-छुपाई' में जीत अपनी बाज़ी देता है और सौ तक गिनकर सबको ढूँढ़ने निकलता है। वह बारी-बारी से सबको खोज लेता है लेकिन केवल नाज़िया बच जाती है। वह उसे खूब खोजता है – आँगन में, चादर के पीछे, बाहर लेकिन वह कहीं नहीं मिलती। जीत पेड़ के नीचे खड़े होकर सोचने लगता है तभी नाज़िया ऊपर से कूदकर उसे धप्पा दे देती है और जीत को फिर से बाज़ी देनी पड़ती है। वह फिर से गिनती गिनने चल पड़ता है। इस कहानी में शाज़िया की चतुराई को दर्शाया गया है। इन कहानियों में लड़के और लड़कियाँ मिलकर ही खेल खेलते हैं। किसी को छोटा-बड़ा नहीं दर्शाया गया है। 'आउट' कहानी में जीत और बबली मिलकर कभी गिट्टे खेलते हैं तो कभी रस्सा कूदते हैं। कभी छुपन-छुपाई खेलते हैं तो कभी गिल्ली-डंडा। फिर वे क्रिकेट खेलते हैं। बबली खेल की अगुवाई करती है और ज़ोर का बल्ला घुमाती है तो बॉल मोहित के आँगन में चली जाती है। अब समस्या आती है कि गेंद कैसे लाएँ? गेंद न होने से खेल रुक जाता है। तब बबली अपनी सूझ-बूझ का परिचय देते हुए कपड़े, कागज़, कतरनों, पन्नियों और सुतली की मदद से एक गेंद बना देती है। जब जीत बल्ला घुमाता है तो कपड़े की गेंद खुल जाती है। इस स्थिति में भी बबली की चतुराई के दर्शन होते हैं। वह गेंद के खुल जाने पर उसके एक कपड़े को पकड़कर आउट-आउट चिल्लाती है। जीत अपने माथे पर हाथ रख लेता है। इस तरह इस कहानी में लड़कियों द्वारा मुख्यतः क्रिकेट खेले जाने और उनकी सूझ-बूझ का परिचय मिलता है।

हम अकसर देखते हैं कि लड़के पुराने टायर को ठेलते हुए तेज़ी से चलाते हैं। लेकिन 'बरखा' क्रमिक पुस्तकमाला की 'झूला' कहानी में बबली भी टायर को तेज़ दौड़ाती है। जीत के कहने पर कि उसे झूला झूलना अच्छा लगता है तो बबली और वह झूला ढूँढ़ने लगते हैं। वे दोनों पेड़ की डाली पर लटककर झूला झूलते हैं, लेकिन उन्हें मजा नहीं आता। फिर वे लोहे के पाइप पर लटककर झूलते हैं लेकिन जीत के हाथ में दर्द हो रहा था। बबली को एक तरकीब सूझती है। वह कहती है कि अपने टायर से झूला बना लेते हैं। टायर को पेड़ पर कौन लटकाएगा — इस बात को लेकर दोनों में छीना-झपटी होती है और टायर हवा में उछलकर पेड़ की डाली पर लटक जाता है। तब जीत उछलकर टायर में बैठ जाता है और बबली टायर और जीत को धीरे-धीरे झुलाने लगती है। यह प्रसंग भी इस आम मान्यता या छवि को तोड़ता है कि केवल लड़कियाँ ही झूला झूलती हैं और लड़के उनके झूले को झुलाते हैं। यहाँ बबली जीत को झूला झुलाती है। इस कहानी में बबली अपने बुद्धि-चातुर्य का भी परिचय देती है।

'बबली का बाजा' कहानी में बबली को घर की सफ़ाई के समय एक डिब्बा मिलता है जिसे हिलाने पर आवाज़ आती है। वह डिब्बा खोलकर देखती है तो पता चलता है कि उसके अंदर चावल हैं। वह उस डिब्बे को लेकर सो जाती है। चूहा रात में चावल खा लेता है। अगले दिन बबली माँ से चावल माँगती है तो माँ यह कहते हुए मना कर देती है कि चावल तो खाने का होता है। यह सुनकर बबली उदास होकर छत पर जाती है। तभी बबली की नज़र सलवार पर पड़ती है और वह उसका नाड़ा निकालकर डिब्बे के दोनों ओर छेदकर बाँध देती है। इस तरह बबली का बाजा यानी उसकी ढोलक बन जाती है। बबली के माध्यम से लड़कियों की बुद्धिमता का संदेश पाठकों तक पहुँचता है। वे संज्ञानात्मक तौर पर भी लड़कियों को कम नहीं आँकेंगे।

'चलो पीपनी बनाएँ' कहानी में भी बबली नाज़िया, मदन और जीत को पीपनी बनाना सिखाती है। वह सभी को एक-एक करके स्पष्ट रूप से निर्देश देती है कि पहले गुठली को धो लो, उसे साफ़ कर लो, उसका छिलका निकाल लो और उसे थोड़ा-सा घिस लो। इस तरह सारे बच्चे बबली के निर्देशन में आम की गुठली से पीपनी बजाना सीखते हैं। इस कहानी के माध्यम से लड़कियों की नेतृत्व क्षमता का भी परिचय मिलता है।

संगीत कला को लेकर हमारे समाज में यह मान्यता रही है कि गायन लड़कियों का क्षेत्र है और वादन लड़कों का और अगर लड़कियों को भूले-से भी वादन के क्षेत्र में अवसर दिए जाएँ तो उन्हें सितार या हारमोनियम तक ही सीमित कर दिया जाता है। जबकि लड़कों के लिए संगीत कला के क्षेत्र में अपेक्षाकृत अधिक विकल्प मौजूद हैं। 'तबला' कहानी में जीत पिताजी से तबला बजाना सीखता है। एक दिन उसे तबला नहीं मिलता तो वह पूरे घर में उसे खोजता है। वह छत पर जाता है तो देखता है कि बबली तबला बजा रही है। वह उससे तबला छीनने की कोशिश करता है लेकिन बबली पूरे अधिकार से कहती है कि तबला उसका भी है। पापा दोनों की लड़ाई रोकते हैं और कहते हैं कि बबली सुबह तबला बजाना सीखेगी और जीत शाम को। इस कहानी के माध्यम से लड़कियों के संगीत कला संबंधी मिथक को तोड़ा गया है कि लड़कियाँ केवल गायन के लिए ही उपयुक्त पात्र हैं। जीत और बबली के पिता का व्यवहार भी यह संदेश देता है कि लड़का और लड़की दोनों बराबर हैं। बबली भी अपनी बात को पूरे आत्मविश्वास के साथ कहती है कि यह तबला उसका भी है। वह भी उन लड़कियों का प्रतिनिधित्व करती है जो लीक से हटकर कुछ अलग करना चाहती हैं।

प्रायः घर और रसोई से जुड़े काम लड़कियों या स्त्रियों के ही माने जाते हैं। इसका अर्थ यह है कि घर सँभालना और विशेषकर चूल्हा-चौका सँभालना केवल लड़कियों की ज़िम्मेदारी है। सामान्यतः आपने देखा होगा कि किताबों में महिला पात्र ही ये सब करती दिखाई दी जाती हैं। लेकिन 'बरखा' क्रमिक पुस्तकमाला की 'चावल', 'चाय', 'भुट्टा', 'फूली रोटी' कहानियों के पात्र जमाल और मदन रसोई के कामों में न केवल रुचि लेते हैं बल्कि उन्हें बखूबी निभाते भी हैं। 'चावल' कहानी में एक दिन जमाल और मदन को ज़ोर की भूख लगती है तो वे मिल-जुल कर चावल बनाने की योजना बनाते हैं। इसके लिए वे क्रमबद्ध तरीके से गाजर और मटर छीलते हैं,

आलू-प्याज़ काटते हैं और चावल बनाकर अपनी भूख मिटाते हैं। इस पूरी प्रक्रिया में इस बात का पता चलता है कि रसोईघर और उसके कामों से उनका परिचय है। 'चाय' कहानी में जब एक दिन जमाल को ज़ुकाम हो जाता है और उसका मन चाय पीने को करता है तो मदन उसके लिए चाय बनाता है। चाय बनाने में वह लौंग और अदरक डालकर पानी को खूब उबालता है। लेकिन चाय में चाय की पत्ती और अदरक बहुत ज़्यादा पड़ जाते हैं तो मदन दूध और चीनी डालकर चाय को दोबारा से उबालता है। तब जमाल चाय पीता है। यह कहानी इस ओर भी संकेत करती है कि मदन को यह पता है कि कड़वी चाय को किस प्रकार से सही किया जा सकता है। 'भुट्टा' कहानी में जमाल के घर मदन और जमाल घर-घर खेलते हैं। तभी जमाल के घर उसके पापा के दोस्त आते हैं। वे दोनों मिलकर उनके लिए भुट्टे बनाते हैं। जमाल भुट्टे उबालता है और मदन भुट्टे को भूनता है। उन्होंने अपने-अपने भुट्टों पर नमक और मसाला लगाया। पापा के दोस्त और उनकी पत्नी उनके भुट्टों की खूब तारीफ़ करते हैं। 'फूली रोटी' में जमाल रोटी बनाने की कोशिश करता है। जब वह सही तरीके से रोटी बना लेता है और रोटी को सेंकने पर वह फूल जाती है तो वह बड़े गर्व से कहता है कि रोटी उसने बनाई है। इस प्रकार '*बरखा*' क्रमिक पुस्तकमाला की कहानियाँ बच्चों में मिल-जुलकर घर के कामों को करने की अभिप्रेरणा देती हैं।

इस प्रकार '*बरखा*' क्रमिक पुस्तकमाला की कहानियाँ जेंडर संवेदनशीलता और जेंडर समानता की भावना को पोषित करती हैं। वे पाठकों का ध्यान बरबस इस ओर खींच ही लेती हैं कि लड़के और लड़कियों के कामों और अवसरों में कहीं कोई भेदभाव नहीं है। उसके सभी पात्र, चाहें वे लड़कियाँ हों या लड़के हर तरीके के कार्य करते हैं। घर-घर खेलने जैसे खेल जो केवल लड़कियों तक ही सीमित समझे जाते थे – जमाल और मदन उसे खेलते हैं और इस संकीर्ण मानसिकता को दूर करते हैं। सामान्यतः समाज में लड़कियों और लड़कों के बीच न केवल काम का ही बँटवारा है, बल्कि खेलों का भी बँटवारा किया जाता है। लेकिन 'बरखा' क्रमिक पुस्तकमाला की कहानियाँ विभाजन की इस रेखा को मिटाती हैं और पाठकों में इस भावना एवं विचार को पोषित करती हैं कि लड़कियाँ भी हर तरीके का खेल खेल सकती हैं। कहानियों में लड़कियों और लड़कों का प्रतिनिधित्व समान रूप से नज़र आता है और दोनों की छवि को गरिमामय रूप में प्रस्तुत करती हैं। बबली, जीत, काजल, माधव, रानी, जमाल, मिली आदि सभी पात्रों की अस्मिता और पहचान को बरकरार रखने की संवेदना का स्पंदन इन सभी कहानियों में बखूबी महसूस किया जा सकता है। समावेशी शिक्षा के संदर्भ में जेंडर संवेदनशीलता को '*बरखा*' क्रमिक पुस्तकमाला में न केवल अनुभूत किया जा सकता है बल्कि उसके प्रत्यक्ष दर्शन किए जा सकते हैं। यह '*बरखा*' क्रमिक पुस्तकमाला की सफलता कही जा सकती है।

संदर्भ

एन.सी.ई.आर.टी. 2008. '*बरखा*', क्रमिक पुस्तकमाला. 2008. एन.सी.ई.आर.टी., नयी दिल्ली.